बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 218

निर्यात योजना का अभाव

गत वर्ष केंद्रीय उद्योग एवं वाणिज्य मंत्रालय ने एक उच्चस्तरीय सलाहकार समूह का गठन किया था। समूह को ऐसे तरीके सुझाने थे जिनकी सहायता से देश के निर्यात में सुधार किया जा सके। अब यह रिपोर्ट सार्वजनिक की जा चुकी है और यह व्यापार नीति को लेकर सरकारी हलकों की सोच का उपयोगी संकेतक है। उस नजरिये से देखें तो निकलने वाले संकेत चिंतित करते हैं। इसमें स्वीकार किया गया है कि निर्यात के क्षेत्र में देश का प्रदर्शन काफी गड़बड़ रहा है लेकिन इसकी अनुशंसाएं भी खरी नहीं उतरतीं। रिपोर्ट में बिल्कुल सही कहा गया है कि भारतीय निर्यात गहरे संकट में है। इसके लिए वैश्वीकरण के खात्मे या विश्व व्यापार की व्यापक समस्याओं को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। जैसा कि रिपोर्ट में कहा गया है इसका कारण यह है कि जिस समय वैश्विक व्यापार वृद्धि का स्तर लगभग ढह गया है, उसी दौरान भारत का कारोबारी प्रदर्शन भी बिगड़ा है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो भारत के निर्यात प्रदर्शन में गिरावट की कुछ नितांत घरेलू वजह भी हैं। इन्हें हल करना आवश्यक है। खेद की बात है कि कुछ उपयोगी अनुशंसाओं वाली यह रिपोर्ट इस सवाल का जवाब नहीं देती कि निर्यात में कैसे इजाफा किया जाए। हकीकत यह है कि कुछ मायनों में यह पुराने रास्ते अपनाने की सलाह देती है। उदाहरण के लिए जब बात कपड़ा एवं वस्त्र क्षेत्र की आती है तो यह सुझाती है कि भारत को बांग्लादेश के साथ मुक्त व्यापार के खतरों का आकलन करना चाहिए। क्या वाकई यह हमारी समस्या है? मुद्दा यह है कि बांग्लादेश का कपड़ा एवं वस्त्र निर्यात वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी है जबकि हमारा नहीं। ऐसे में सवाल यह होना चाहिए कि आखिर भारतीय वस्त्र निर्यातक बांग्लादेश और दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों की वैश्विक हिस्सेदारी में अपना हिस्सा कैसे सुनिश्चित करें। यहां संरक्षणवादी उपायों का तो कोई प्रश्न ही नहीं है।

वृहद पक्ष देखें तो रिपोर्ट में दिए गए सुझाव बाधित निवेश, मौद्रिक नीति के कमजोर पारेषण आदि को लेकर अन्य स्थानों पर जताई जा रही चिंता के अनुरूप ही हैं। व्यापार संवर्द्धन नीति की बात करें तो रिपोर्ट की अनुशंसाएं अफसरशाही मानसिकता से ग्रस्त हैं और ये पर्याप्त महत्त्वाकांक्षी भी नहीं दिखतीं। उदाहरण के लिए इसमें सुझाव दिया गया है कि मौजूदा निवेश संवर्द्धन एजेंसी को प्रोत्साहन देने का अधिकार दिया जाना चाहिए और एक व्यापार संवर्द्धन एजेंसी अलग से गठित की जानी चाहिए। ये सारे उपाय मूल समस्या को हल नहीं करते। असल समस्या यह है कि देश में व्यापार वार्ता और प्रबंधन ध्वस्त हो चुके हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि प्रधानमंत्री के अधीन होने के बजाय ये विभिन्न मंत्रालयों के अधीन हैं। अमेरिका में राष्ट्रपति अक्सर ऐसी वार्ताओं को विधायिका की निगरानी से मुक्त करने के लिए अनुमति देता है और अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि कार्यालय सीधे राष्ट्रपति के अधीन होता है।

कम से कम एक मोर्चे पर रिपोर्ट अत्यधिक आशावाद की शिकार नजर आती है। रिपोर्ट में स्वीकार किया गया है कि मंत्रालय के बाहर किसी प्रतिष्ठित संस्थान द्वारा बड़े आंकड़ों के विश्लेषण से निर्यात नीति तैयार की जा सकती है। यह थिंक टैंकों या आईटी सलाहकारों के लिए अच्छी खबर हो सकती है लेकिन इससे नीति निर्माण में सुधार होता नहीं दिखता। मूल समस्या है घरेलू उद्योग का प्रतिस्पर्धी न होना और यह समस्या आगे भी बनी रहेगी। जरूरत यह है कि घरेलू बाजार सस्ता और भरोसेमंद हो, कारक बाजार लचीले हों, कर दर कम हो और लालफीताशाही का प्रभाव भी कम हो। यह कोई रॉकेट विज्ञान नहीं है। इसके लिए केवल राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।

अजय मोहंती

वृद्धि, आय, गरीबी और नोबेल पुरस्कार

नियंत्रण वाले बेतरतीब परीक्षण के नतीजों को हर जगह-हर समय लागू करने को लेकर सतर्कता बरतनी होगी। इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाल रहे हैं **आलोक शील**

वर्ष 2019 के लिए अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार अभिजित बनर्जी, एस्टर डफ्लो और माइकल क्रेमर को संयुक्त रूप से दिया गया है। उन्हें यह पुरस्कार 'ऐसे नियंत्रित बेतरतीब परीक्षण के प्रयोगात्मक कार्य के लिए दिया गया जिसने दुनिया भर में गरीबी से लड़ने में अहम सहायता की है। महज दो दशक में इस नए प्रयोग पर आधारित रुख ने विकासात्मक अर्थशास्त्र में काफी बदलाव उत्पन्न किया है और यह अब शोध के क्षेत्र में काफी फल फूल रहा है।'

उनके काम के केंद्र में कम लागत वाले हस्तक्षेप हैं जो ऐसे प्रायोगिक शोध से निकले हैं जो बताता है कि किस तरह का हस्तक्षेप कारगर है और कैसा नहीं। दालों का मुफ्त वितरण बाल टीकाकरण केंद्रों पर बच्चों की आवक सुधारता है या नहीं अथवा निःशुल्क मच्छरदानी वितरण से मलेरिया के मामलों में कमी आती है या उन्हें रियायती दर पर बांटने से ऐसा होता है, आदि इस शोध के उदाहरण हैं।

उनका काम गरीबों की सहायता और उन पर केंद्रित सरकारी योजनाओं पर व्यय होने वाली राशि को अधिक उपयोगी बनाने वाला है लेकिन इस दावे पर करीबी नजर डालनी होगी कि उनके काम ने विकास अर्थशास्त्र में आमूलचूल बदलाव उत्पन्न किया है। इसकी तीन मोर्चों पर परख आवश्यक है।

पहला, 2015 में अर्थशास्त्र का नोबेल एंगस डीटन को इसी काम के लिए दिया गया था। उनका अध्ययन भी गरीबी, खपत और लोक कल्याण पर था। यह बात भी स्पष्ट नहीं है कि प्रायोगिक नियंत्रित बेतरतीब परीक्षण डीटन के तरीके से बेहतर है या नहीं। डीटन का काम विस्तृत विश्लेषण पर आधारित था।

दूसरा, प्राकृतिक विज्ञान में आजमाए जाने वाले वैज्ञानिक तौर तरीकों को सामाजिक विज्ञान में अपनाए जाने की पर्याप्त वजह है। भौतिक जगत जिस तरह प्राकृतिक कानूनों का अनुगामी होता है, मानव विज्ञान के साथ ऐसा नहीं है। एक सेब के माध्यम से गुरुत्व का सिद्धांत खारिज हो सकता है लेकिन इंसानी मामलों में लोग अलग-अलग घटनाओं पर अलग प्रतिक्रिया देंगे।

बनर्जी, डफ्लो और क्रेमर की शोध प्रवृत्ति तथा व्यवहारात्मक अर्थशास्त्री कास संस्टेन, रिचर्ड थालेर और स्टीवन लेविट के तरीकों में काफी समानता है। उन्होंने भी ऐसा ही प्रयोगात्मक रुख अपनाया जो औषधीय मनोविज्ञान पर आधारित था जिसमें लोगों के वांछित व्यवहार का अध्ययन किया गया। मसलन स्कूल के बाहर वाहन धीमे करना, पुरुषों के शौचालय में यत्र-तत्र पेशाब छलकाना। बहरहाल व्यवहार अर्थशास्त्र राजकोषीय गुणक सुधारने में नाकाम रहा। रिचर्ड थालेर को 2017 में नोबेल मिला। उन्होंने कर कटौती भुगतान की मदद से आय में स्थायी वृद्धि का भ्रम रचने की बात की थी। परंतु सांस्कृतिक अंतर के कारण आय वृद्धि का लोगों पर अलग असर हो सकता है। विभिन्न प्रकार के हस्तक्षेप पर भी भिन्न-भिन्न स्थान और समय पर उनकी प्रतिक्रिया भी अलग-अलग हो सकती है। जाहिर है ऐसे में यह बात काफी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि आखिर बेतरतीब परीक्षण कहां और कब किए गए। इसके बाद ही उन्हें सफलतापूर्वक आजमाया जा सकता है।

तीसरी बात, वृहद स्तर पर गरीबी उन्मूलन का सबसे तेज तरीका अब भी उच्च वृद्धि, निवेश और उत्पादक रोजगार है। विश्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार बीते दो दशक में अत्यधिक गरीबी में भारी कमी आई और यह करीब 30 फीसदी से घटकर 10 फीसदी के आसपास रह गई। यह ऐसी अवधि भी रही जब उभरते और विकासशील देशों में जहां सबसे अधिक गरीब रहते थे वहां विकास में तेजी आई। सन 1999 से 2015 के बीच में गरीबी में कमी की गति सन 1981 से 1999 की तुलना में कहीं तेज थी। चीन, भारत और सब-सहारा अफ्रीका में गरीबी में आई कमी के अंतर को वृद्धि दर में अंतर से समझा जा सकता है। ऐसे में ट्रिकल डाउन के सिद्धांत की चाहे जितनी आलोचना की गई हो, वह यहां सही प्रतीत होता है।

इसे प्रति व्यक्ति आय और अत्यधिक गरीबी के बीच के आपसी संबंध से अच्छी तरह समझा जा सकता है। सन 2015 में कम आय वर्ग में अत्यधिक गरीबी 43.9 फीसदी, निम्न मध्य वर्ग में 13.9 फीसदी और उच्च मध्य तथा उच्च वर्ग में क्रमशः 1.7 फीसदी और 0.7 फीसदी थी। हालांकि संकेत यह भी है कि ट्रिकल डाउन का असर उच्च और उच्च मध्य आय वर्ग वाले देशों में कहीं बेहतर है जबकि निम्न मध्य आय और निम्न आय वाले देशों में कम। हालांकि वियतनाम और भारत प्रति व्यक्ति आय के मामले में बहुत अलग नहीं हैं लेकिन वियतनाम में प्रति व्यक्ति आय न केवल काफी कम है बल्कि वह उच्च मध्य आय वर्ग वाले देश ब्राजील से भी कम है। यहां तक कि अत्यधिक गरीबी के मामले में नेपाल भी भारत से बेहतर स्थिति में है।

अत्यधिक गरीबी को लेकर ऐसे अलग अनुभव बताते हैं कि वृद्धि और प्रति व्यक्ति आय तथा अत्यधिक गरीबी के बीच का रिश्ता निम्न मध्य आय और अल्प आय वाले देशों में कारगर नहीं है। नोबेल विजेताओं द्वारा किए गए हस्तक्षेप जैसे नीतिगत हस्तक्षेप इन देशों में बड़ा अंतर पैदा कर सकते हैं।

उच्च आय और उच्च मध्य आय वाले देशों में ध्यान अत्यधिक गरीबी से सामाजिक गरीबी और असमानता की ओर स्थानांतरित हो गया है। वैश्विक स्तर पर अत्यधिक गरीबी सन 1990 के 35.9 फीसदी से घटकर 2015 में 10 फीसदी रह गई, सामाजिक गरीबी (विश्व बैंक के अनुसार प्रति व्यक्ति 5.5 डॉलर) 67 फीसदी से घटकर केवल 46 फीसदी पर आई। इस तरह देखें तो आधी दुनिया गरीब है। वृद्धि ने सुधार तो किया लेकिन असमान। चूंकि अत्यधिक गरीबी के मानक नीचे हैं इसलिए इसमें तेजी से गिरावट आई। तेज वृद्धि के कारण असमानता में भी तेज गति से इजाफा होता है। चूंकि ऐसे देशों में सामाजिक गरीबी और असमानता कम करने के लिए लक्षित नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है तो क्या यहां नियंत्रित बेतरतीब परीक्षण का प्रयोग किया जा सकता है? हमने ऊपर जिन तीन बिंदुओं की चर्चा की वे किसी तरह बनर्जी, डफ्लो या क्रेमर के महत्त्वपूर्ण काम को सीमित करने का प्रयास नहीं है। नोबेल समिति द्वारा उनका चयन ही उनके काम को रेखांकित करने के लिए पर्याप्त है। हमने जिन बिंदुओं की बात की, इन शोधकर्ताओं ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इन्हें स्वीकार भी किया है। ऐसे हस्तक्षेप सर्वाधिक गरीबों के जीवन में सुधार कर सकते हैं और सामाजिक गरीबों के मामले में भी ऐसी दलील का इस्तेमाल किया जा सकता है। परंतु ऐसी कोई जादू की छड़ी नहीं है जिससे गरीबी एक झटके में दूर हो जाए। हमें उक्त परीक्षण के नतीजों को लागू करते समय सावधानी बरतनी होगी और वृहद स्तर की नीति से जुड़े हस्तक्षेप पर लगातार ध्यान देना होगा। ऐसा करके ही तेज वृद्धि, निवेश और उत्पादक रोजगार का समुचित माहौल तैयार किया जा सकेगा।

(लेखक इक्रियर में मैक्रोइकनॉमिक्स के आरबीआई चेयर प्रोफेसर हैं।)

पेट्रोलियम उत्पादों की खुदरा बिक्री पर बड़ा फैसला

दिल्ली डायरी

ए के भट्टाचार्य

दीवाली से कुछ दिन पहले केंद्र सरकार ने पेट्रोलियम उत्पादों के खुदरा विपणन पर अपनी नीति को उदार बनाने के लिए एक बड़ा कदम उठाया। यह पिछले 17 वर्षों में इस क्षेत्र में लिया गया सबसे बड़ा फैसला है। वर्ष 2002 में पेट्रोलियम उत्पादों की खुदरा बिक्री को निजी क्षेत्र के लिए खोला गया था लेकिन इसके लिए आवेदक को पेट्रोलियम क्षेत्र में कम से कम 2,000 करोड़ रुपये निवेश करने की शर्त जुड़ी थी। पिछले सप्ताह लिए गए फैसले के तहत 250 करोड़ रुपये से अधिक हैसियत वाली कोई भी कंपनी पेट्रोलियम उत्पादों की खुदरा बिक्री के क्षेत्र में उतर सकती है।

उम्मीद है कि गैर-पेट्रोलियम क्षेत्र की कई कंपनियों की पेट्रोल और डीजल की खुदरा बिक्री में दिलचस्पी होगी। टोटाल और सऊदी अरामको जैसी दिग्गज अंतरराष्ट्रीय कंपनियां भारतीय बाजार में उतर सकती हैं। खुदरा क्षेत्र की बड़ी कंपनियां भी पेट्रोल पंप खोलने पर विचार कर सकती हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि पेट्रोलियम उत्पादों की खुदरा बिक्री के क्षेत्र में उतरने वाली कंपनी के लिए पेट्रोलियम क्षेत्र में निवेश करने की शर्त को खत्म कर दिया गया है। लेकिन नीति को उदार बनाने की यह पहल कितनी सफल होगी?

स्पष्ट है कि 2002 में जब खुदरा नीति को उदार बनाया गया था तो उसके वांछित परिणाम नहीं आए। वर्ष 2002 में पेट्रोल और डीजल के खुदरा विपणन में सार्वजनिक क्षेत्र की तेल कंपनियों का दबदबा था। तब देश में 18,924 पेट्रोल पंप थे। पिछले 17 वर्षों में इन कंपनियों ने 39,000 पेट्रोल पंप जोड़े और उनके पेट्रोल पंपों की संख्या 57,924 पहुंच गई। इसके विपरीत 2002 में नीतिगत उदारीकरण के बावजूद पेट्रोल पंप खोलने के मामले में निजी क्षेत्र का प्रदर्शन बहुत खराब रहा है। इन 17 वर्षों में निजी क्षेत्र ने केवल 6,700 पेट्रोल पंप खोले। इनमें नयारा एनर्जी लिमिटेड (पहले एस्सार ऑयल) ने 5,128, रिलायंस पेट्रो ने 1,400 और शेल इंडिया ने 145 पेट्रोल पंप खोले हैं। इस अवधि के दौरान कई उत्पादों के लिए बाजार से जुड़ी मूल्य व्यवस्था नहीं होने के कारण निजी क्षेत्र ने इसे ज्यादा भाव नहीं दिया।

ऐसे में पेट्रोल पंपों की अधिकांश मांग को सरकारी तेल विपणन कंपनियों ने पूरा किया। पिछले 17 वर्षों में पेट्रोल और डीजल की बिक्री 6 फीसदी की सालाना चक्रवृद्धि दर (सीएजीआर) से बढ़ने का अनुमान है। इस दौरान पेट्रोल पंपों की सीएजीआर 7.5 फीसदी रही। काफी हद तक इस वृद्धि को बनाए रखने में सार्वजनिक क्षेत्र के पेट्रोल पंपों का योगदान रहा।

पिछले सप्ताह के फैसले से पहले सरकार ने एक विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों को स्वीकार किया। इस समिति को 2002 के नीतिगत उदारीकरण के प्रभावों की समीक्षा करने का काम सौंपा गया था। समिति का कहना था कि सरकार को तेल विपणन क्षेत्र में नई कंपनियों को प्रवेश देने का अधिकार अपने पास रखना चाहिए और बाकी नियमों में ढील देनी चाहिए। समिति ने साथ ही सुझाव दिया था कि 250 करोड़ रुपये की हैसियत रखने वाली किसी भी कंपनी को देश के पेट्रोल पंप स्थापित करने की अनुमति दी जानी चाहिए। समिति ने साथ ही यह सिफारिश भी की थी कि सरकार को यह शर्त रखनी चाहिए कि नई कंपनियों को अपने कम से कम 5 फीसदी पेट्रोल पंप दूरदराज के अधिसूचित इलाकों के खोलने होंगे। उन्हें पेट्रोल खोलने की अनुमति मिलने के पांच साल के भीतर ऐसा करना होगा। हालांकि नई नीति कितनी कारगर होगी, इस पर कई सवाल उठ रहे हैं। नई कंपनियां दूरदराज के अधिसूचित इलाकों में 5 फीसदी पेट्रोल पंप खोलने की शर्त कैसे पूरी करती हैं, इसकी निगरानी से विवेक का मसला खड़ा होगा। इससे समस्या खड़ी हो सकती है और मुद्दे का राजनीतिकरण हो सकता है। इस तरह के सशर्त नीतिगत प्रोत्साहनों के दुरुपयोग की संभावना बहुत अधिक रहती है। इसमें पूर्व के उदाहरणों को नहीं भुलाया जाना चाहिए। निर्यात दायित्वों से जुड़ी आयात रियायतों की योजना का कैसे दुरुपयोग किया गया था और खराब निगरानी की गई थी।

इसी तरह नई नीति को और उदार बनाए जाने की गुंजाइश है। इस बात की कोई वजह नहीं है कि नई कंपनियों को विभिन्न तेलशोधक संयंत्रों से प्राप्त पेट्रोलियम उत्पादों को एक ही पेट्रोल पंप से बेचने की अनुमति क्यों नहीं दी जा सकती है। अगर नए पेट्रोल पंप पारदर्शिता बनाए रखते हैं और इस बात का खुलासा करते हैं कि खरीदार किस तेलशोधक संयंत्र का तेल खरीद रहे हैं, तो इस बात का कोई कारण नहीं है कि उनके लिए विभिन्न तेलशोधक संयंत्रों से खरीदे गए ईंधन को अलग-अलग पेट्रोल पंपों के जरिये बेचना अनिवार्य बनाया जाए।

ज्यादा परेशान करने वाला सवाल यह है कि अगर नीति को उदार बनाने का मकसद तेल विपणन में ज्यादा प्रतिस्पर्द्धा का दौर शुरू करना है तो सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सार्वजनिक तेलशोधक संयंत्र पेट्रोलियम उत्पादों के मूल्य निर्धारण में पारदर्शिता लाएं। कारगर प्रतिस्पर्द्धा तभी शुरू होगी जब नई कंपनियां वास्तव में मौजूदा तेलशोधक संयंत्रों से तेल खरीद पाएंगी। अभी उनके पास अपने तेलशोधक कारखाने नहीं हैं। तेलशोधक संयंत्रों में पारदर्शी मूल्य व्यवस्था के अभाव में इस तरह की खरीद मुश्किल होगी।

पेट्रोल पंप के क्षेत्र में उतरने वाली नई कंपनियां पेट्रोल और डीजल का आयात कर सकती हैं और उन्हें ऐसे दाम पर बेच सकती हैं जिससे सार्वजनिक तेलशोधक संयंत्रों को प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ सकता है। लेकिन देश के सार्वजनिक तेलशोधक संयंत्र खुदरा तेल के मूल्य में ज्यादा सुधार लाने के लिए इस अवसर का उपयोग क्यों न करें। इस तरह की पारदर्शिता से सार्वजनिक क्षेत्र के तेलशोधक संयंत्रों के बीच उस अंतिम मूल्य के लिए प्रतिस्पर्द्धा होगी जिस पर पेट्रोल पंपों के जरिये पेट्रोलियम उत्पाद बेचे जाएंगे। इस तरह के सुधार लागू होने के बाद नई कंपनियों को पेट्रोल पंप लगाने की अनुमति देने के सरकार के कदम की प्रभावशीलता में काफी सुधार होगा।

कानाफूसी

सरकार की नजर तेल क्षेत्र पर

सरकार तेल क्षेत्र की कुछ कंपनियों में विनिवेश की योजना बना रही है। इस बीच पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस विभाग से संबद्ध संसद की स्थायी समिति ने पेट्रोलियम क्षेत्र में विनिवेश, विलय और अधिग्रहण विषय का अध्ययन करने का निश्चय किया है। ये विषय उन 15 विषयों में शामिल होंगे जिन पर वर्ष 2019-20 में विभाग की नजर रहेगी। वह खुदरा आउटलेट और एलपीजी वितरण एजेंसियों पर अपनी रिपोर्ट पेश करेगी। इसके अलावा वह मूल्य निर्धारण, पेट्रोलियम उत्पादों के वितरण और आपूर्ति, सार्वजनिक क्षेत्र की तेल विपणन कंपनियों से जुड़े कानूनी मसले, अनुबंधित प्रबंधन और सरकारी तेल विपणन कंपनियों की खरीद प्रक्रिया में पारदर्शिता कैसे आएगी जैसे विषयों पर अपनी बात कहेगी।

बेतुकी दलील

उत्तर प्रदेश विधानसभा उपचुनाव में करारी शिकस्त के बाद बहुजन समाज पार्टी की प्रमुख मायावती हार के कारण बताने में बेतुकी दलीलें दे रही हैं। गत सप्ताह जिन 11 सीट के नतीजे आए उनमें से समाजवादी पार्टी को तीन सीट पर जीत मिली जबकि बसपा एक भी सीट नहीं जीत सकी, बल्कि उसे अपनी एक सीट सपा के हाथ गंवानी पड़ी। सन 2019 के लोकसभा चुनाव के बाद सपा-बसपा गठबंधन खत्म करने के बाद अब मायावती ने सत्ताधारी भारतीय जनता पार्टी पर आरोप लगाया है कि उसने सपा की मदद की। मायावती ने कहा कि सन 2022 के विधानसभा चुनाव के पहले भाजपा ने सपा को कुछ सीट इसलिए जिताईं ताकि बसपा कार्यकर्ताओं का मनोबल तोड़ा जा सके। उन्होंने जोर देकर कहा कि उनकी पार्टी भाजपा के इरादे कामयाब नहीं होने देगी।

आपका पक्ष

मानव तस्करी खत्म करने की जरूरत

मानव तस्करी की जड़ें गहरी होती जा रही हैं। पाकिस्तान, भारत, अफगानिस्तान, नेपाल, श्रीलंका, बांग्लादेश सहित कई एशियाई देशों से लड़कियों और बच्चों की तस्करी कर पश्चिमी और दक्षिणी यूरोप के कई हिस्सों में बेचा-खरीदा जा रहा है। जांच एजेंसियां, सुरक्षा कानून और मानव तस्करी रोधी संस्थाओं की कोशिशों के बाद भी मानव तस्करी पर रोक नहीं लग सकी है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत सहित कई एशियाई देशों से बच्चों की तस्करी कर यूरोप के कई हिस्सों में जिस्मफरोशी में धकेल दिया जाता है। दुनिया भर में नशीली दवाओं और अपराध की निगरानी करने वाली संयुक्त राष्ट्र की संस्था यूएएन ऑफिस ऑन ड्रग्स ऐंड क्राइम (यूएनओडीसी) की ग्लोबल रिपोर्ट ऑन ट्रैफिकिंग इन पर्सन-2018 के मुताबिक 142 देशों से जुटाई गई रिपोर्ट में मानव तस्करी के तौर-तरीकों की पड़ताल की गई है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि पीड़ितों के साथ हो रहे यौन शोषण के साथ ही मानव तस्करी अब भयानक रूप ले चुकी है। तस्करी के शिकार लोगों में 30 फीसदी बच्चे हैं। इनमें लड़कियों की संख्या अधिक है। कमोबेश सभी देशों ने अपनी सीमाओं के भीतर तस्करी रोकने के लिए कड़े कानून बनाए हैं। कई संस्थाएं और सुरक्षा जांच एजेंसियां भी मानव तस्करी पर निगाह रखती हैं। फिर भी मानव तस्करी पर रोक लगाने और आंकड़ों में कमी आने के बजाय उक्त रिपोर्ट तस्करी के भयावह रूप का खुलासा करती है।

मानव तस्करी रोकने के लिए सभी देशों की सरकारों को मिलकर काम करना होगा

लिहाजा, पीड़ित देशों की सरकार, मानव तस्करी रोधी संस्थाएं और सुरक्षा जांच एजेंसियों को अपनी परंपरागत कार्यप्रणाली को खत्म करना होगा। नई तकनीक और साधन संपन्न देशों की मदद से मानव तस्करी पर शिकंजा कसने की जरूरत है जिससे मानव तस्करी के कारोबार की जड़ें खोदी जा सके। साथ ही भविष्य में कोई भी परिवार अपने बच्चों को नहीं खो सके और उनकी सुरक्षा की उम्मीदें बनी रहे।

पवन कुमार मौर्य, नई दिल्ली

वैश्विक सूचकांक में पिछड़ता भारत

किसी भी देश का असल विकास, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन स्तर, सामाजिक समानता, महिला शक्तीकरण आदि आधार पर तय किया जाता है। इसलिए आजादी के बाद सामाजिक-आर्थिक समानता लाने की कोशिश की गई। लेकिन सामाजिक-आर्थिक वैश्विक सूचकांक की रिपोर्ट में भारत का प्रदर्शन खराब रहता है। हर साल यूएनडीपी मानव विकास सूचकांक जारी करता है। वर्ष 2018 की रिपोर्ट के अनुसार भारत को 189 देशों में 130वां स्थान मिला था। वर्ष 2019 की रिपोर्ट के अनुसार भारत को 156 देशों में 140वां स्थान मिला है। वैश्विक भूख सूचकांक में भारत को 117 देशों में 102वां स्थान मिला जबकि सामाजिक एवं आर्थिक विषमता में भारत को 157 देशों में 147वां स्थान मिला। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की 2017-18 की रिपोर्ट में महिलाओं के खिलाफ अपराध में उत्तर प्रदेश शीर्ष पर रहा। यह सभी सूचकांकों के नतीजे दर्शाते हैं कि सरकार द्वारा उठाए जा रहे कदम ठीक से लागू नहीं हो रहे हैं। अतः सरकार को इन सूचकांकों को गंभीरता से लेकर तंत्र में मौजूद खामियों को दूर कर सही रणनीति के आधार पर विकासवादी दृष्टिकोण अपनाना जरूरी है।

निशांत महेश त्रिपाठी, नागपुर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।